Gyanvividha, Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025 : PP-326-330

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 326-330
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

मनीष ठाकुर
शोधार्थी,
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय.

Corresponding Author :

मनीष ठाकुर
शोधार्थी,
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय.

वासुदेवशरण अग्रवाल के साहित्य में राजधर्म

प्रत्येक लेखक पर युग-विशेष की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। सभी विद्वान प्रायः एक विषय विशेष की दृष्टि से अपने-अपने अनुसंधान में लगे हुए थे। उनमें प्रमुख रूप से रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अरविंद घोष, महामहोपाध्याय मधुसूदन ओझा, कुमारस्वामी, आचार्य टी. वी. कपाली शास्त्री, गोविन्द चन्द्र पाण्डे, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, मैथिलिशरण गुप्त, बाबू गुलाबराय, कृष्णदेव उपाध्याय, रामधारी सिंह 'दिनकर', आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बलदेव उपाध्याय, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, कुबेरनाथ राय, देवेन्द्र सत्यार्थी ,विद्यानिवास मिश्र, डॉ. देवराज, वियोगी हरि, भगवत शरण उपाध्याय, देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, श्यामाचरण दुबे एवं डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल इत्यादि विद्वान भारतीय संस्कृति का अध्ययन एवं अनुसंधान कर रहे थे। उन्होंने प्राक्-वैदिक काल से लेकर मलिक मोहम्मद 'जायसी', तुलसीदास तक के काल का सांस्कृतिक अध्ययन किया है, जिसमें भारत सावित्री, अष्टाध्यायी, मार्कण्डेय पुराण, मेघदूत, हर्षचरित, कादंबरी, कीर्तिलता, पद्मावत की संजीवनी व्याख्या इत्यादि प्रमुख हैं।

भारतीय इतिहास की अनूठी विशेषता है, कि उसमें समय-समय पर होने वाली धार्मिक हलचलों की छाप प्रायः सारे देश पर एक-सी पड़ी है। सांस्कृतिक रूप से चार बड़ी क्रान्तियाँ हुई है। पहली क्रांति तब हुई जब आर्य भारतवर्ष में आए अथवा जब भारतवर्ष में उनका आर्येतर जातियों से संपर्क हुआ। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार भारतीय धार्मिक विचार-धारा में तीन बड़ी क्रांतियाँ हुई हैं। "पहली क्रांति वेदव्यास के द्वारा हुई, जिन्होंने लोक में व्याप्त वैदिक तत्त्वज्ञान को निषाद-संस्कृति के धार्मिक आचार-विचारों के साथ मिला कर महाभारत में समन्वय किया।"[1] दूसरी क्रांति तब हुई जब महावीर और गौतम बुद्ध ने इस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की

चिंतनधारा को खींचकर वे अपनी मनोवांक्षित दिशा की ओर ले गए। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "दूसरी बड़ी क्रांति विक्रम संवत् की प्रारंभिक कई शतियों में भागवत धर्म और महायान बौद्ध धर्म के समन्वय प्रधान चिंतन के रूप में प्रकट हुई, जिसके द्वारा मोक्ष प्रधान संन्यास मार्ग और प्रवृत्तिप्रधान गृहस्थ मार्ग के बीच में पड़ी हुई खाई को पाटा गया और जिसके अंत में 'प्राप्तो गृहस्थैरपि मोक्षमार्गः' वाला चौड़ा मार्ग या महायान प्रचारित हुआ।"[2] तीसरी क्रान्ति उस समय हुई जब इस्लाम विजेताओं के धर्म के रूप में भारत पहुंचा। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "प्रत्येक प्रान्तीय साहित्य ने सोलहवीं शती की भक्तिप्रधान क्रान्ति और साहित्यिक पुनरुत्थान में भाग लिया। हिन्दी के क्षेत्र में तुलसीदास और सूरदास इस युग के मुख्य प्रतिनिधि हैं, जिनमें एक ही युगधारा राम और कृष्ण को प्रतीक बना कर दो रूपों में प्रकट हुई।"[3] गुसाई जी ने रामचरितमानस, कीर्तिवास ओझा ने बंगीय रामायण, बलराम ने रामायण, रामसरस्वती नामक महाकवि ने रामायण, विजयनगर सम्राट् कृष्णराय के समय में धारवाड़ जिले के कुमार वाल्मीकि ने कन्नड़ रामायण बनाई। उड़िया भाषा में जगन्नाथदास ने भागवत, शारदा दास ने महाभारत और अच्युतानन्द ने हरिवंश के काव्यानुवाद उत्कल भाषा में, भक्त शिरोमणि पोतनामात्य ने तेलगु भाषा में भागवत का अनुवाद किया। असम भाषा के श्रीशंकर नामक महाकवि भागवत, और महाभारत दोनों ही काव्यों का असम भाषा में काव्यानुवाद किया। चैतन्य महाप्रभु के कृष्ण भक्ति का प्रभाव बंगाल, उड़ीसा, वृन्दावन और कर्नाटक तक हुआ। चण्डीदास की कृष्ण-भक्ति-पदावली पद, विट्ठलनाथ ने भागवत पुराण का कन्नड़ भाषा में काव्यानुवाद किया। कन्नड़ साहित्य में विभूति वैष्णव दासों के रचे हुए, 'दासर-पदगल' (दासों की पदावली) नाम से उन पदों का संग्रह पद मिलते हैं। चौथी क्रांति भारत में यूरोप का आगमन हुआ तथा उसके संपर्क में आकर हिंदुत्व एवं इस्लाम दोनों प्रभावित हुए। जब भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति में परस्पर टकराव होता है। पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति को संक्रमित करने की कोशिश करती है। ईसाई मिशनरियाँ समाज के अंतिम पायदान के लोगों को धड़ाधड़ ईसाई बनाकर ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार कर रही थीं। विज्ञान ने मानव के भौतिक स्तर को तो उन्नत किया, किन्तु आध्यात्मिकता के चिरस्थापित मूल्यों के प्रति संदेह उत्पन्न करके उसे भीतर से खोखला बना डाला है। एक ओर भारतीय पुनरुत्थान सभी धर्मों की मूलभूत समानता का सन्धान कर रहा था तो दूसरी ओर 'फूट डालो राज्य करो' की नीति वाले गोरों का भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों में साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने का षड्यंत्र चल रहा था। कुछ पृथक्तावादी मुसलमान पृथक मुस्लिम राष्ट्र की योजना में इस साम्प्रदायिकता को अस्त्र के रूप में प्रयुक्त कर रहे थे। धर्म अंधविश्वासों और रुढ़ियों में सिमट गया था। परमात्मा मंदिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों में कैद हो गया था। धर्म मानव के कर्म को सुरभित नहीं कर पा रहा था। उसका व्यवहारिक पक्ष, जो व्यक्ति के समाज-सापेक्ष आत्मोद्धारपरक आचरण में प्रकट होता है, उपेक्षित हो गया था। दयानंद सरस्वती ने वेदों के आलोक में पुराणपंथी रुढ़ियों के अंधकार को विदीर्ण किया, रामकृष्ण परमहंस ने सदाचार में धर्म का दर्शन कराया, उन्होंने सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धांतों में उनकी स्वयं अनुभूति करके और उन्हें अपने आचरण में उतारकर, समन्वय किया। स्वामी विवेकानंद ने जातिगत उच्चता की मान्यता पर वज्रपात किया, छुआछूत की भावना को भी निर्मूल किया और हिन्दुत्व के अध्यात्म और इस्लाम के पौरुष के समन्वय में भारत के नवीन धर्म के दर्शन किए। बापू ने धार्मिक पुनर्जागरण की इस परम्परा को आगे बढ़ाया। उन्होंने सर्वधर्म – समभाव का प्रचार किया, हरिजनोद्धार का व्रत लिया। उक्त सभी महापुरुषों ने सिद्ध किया है कि धर्म पूजा-पाठ या उपासना के तौर-तरीकों का नहीं, मानव के आत्म कल्याण और विश्व-कल्याण की योजना का नाम है, वह मनुष्य के सदाचरण में प्रकट होता है, उसे काम, क्रोध आदि की सहज दुर्बलताओं से मुक्त करता है और समाज से बैर-विरोध मिटाकर सौहार्द और सुव्यवस्था कायम करता है।

वासुदेवशरण अग्रवाल के साहित्य में धार्मिक

पुनर्जागरण का स्वरूप दिखाई पड़ता है। उनका साहित्य धार्मिक चेतना के इस नव्य आलोक से सर्वत्र आलोकित है लगता है, जैसे उन्होंने धर्मोदधि का मन्थन करके ही अपने काव्यामृत को निकाला है। उनका साहित्य धार्मिक इतिहास भागवत धर्म के समन्वयात्मक प्रयत्नों का इतिहास है। जिसमें सिद्धि को प्राप्त करानेवाले अनेक आगम मार्ग जैन, बौद्ध, शैव, सभी ने एक ही मूल प्रेरणा से केवल नाम-भेद रखते हुए भाग लिया। वे अलग-अलग बटे हैं; किंतु वे सब आपस में ऐसे मिलते हैं, जैसे गंगा के प्रवाह समुद्र में मिलते हैं "लोक मानस के जिस सरोवर में शताब्दियों से सूखा पड़ा हुआ था, वहीं भक्तिजन्य मनोभावों का अटूट जल बरस पड़ा। सगुण लीलाओं को गाने के लिए जनता तरस रही थी, उसके लिए द्वार खुल गया। तुलसी के शब्दों में मेघ राम के यश का सुंदर जल ले कर चारों ओर बरसने लगे-

बरर्षाह राम सुजस बर बारी।
मधुर मनोहर मंगलकारी ॥

प्रेम उस जल का मिठास था, भक्ति उसकी शीतलता थी; वही लोक के मन रूपी सरोवर में भर गया। वैसे ही एक सरोवर की कल्पना तुलसीदास का रामचरित मानस है।"[4] राम शरीरधारी धर्म है। वे धर्मज्ञ, धर्मिष्ठ हैं। मन, कर्म और वाणी से राम जो भी चरित्र करते हैं, उससे हमें धर्म की नई-नई व्याख्या प्राप्त होती है। राम सनातन धर्मवृक्ष के बीज हैं। अन्य सब मनुष्य उस वृक्ष के पत्र, पुष्प और फल हैं, उनके चरित्र के आदर्श में शरीर और मन दोनों का समावेश है। राम वह हैं जिनमें शारीरिक विकास और नैतिक विकास रथ के दो पहियों की तरह साथ-साथ चलते हैं। वे नियतात्मा हैं। उन्होंने इंद्रियों का जय किया है। वे प्रज्ञावादी हैं। "प्रज्ञावादी दर्शन जीवन के सब व्यवहारों को चलाने के लिए विशेषतः राजधर्म के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। वह जीवनोपयोगी सब दर्शनों में सिरमौर था। हे राजन्, इस विश्व का कर्त्ता एक अद्वितीय ब्रह्म है, जिसे तुम नहीं जानते। जैसे समुद्र पार करने के लिए नाव उपयोगी है, वैसे ही अकेला सत्य स्वर्ग तक पहुंचने की सीढ़ी है।"[5] वे महावीर्य हैं। संग्राम में पैर पीछे नहीं रखते। धृति और बुद्धि दोनों का उनमें विकास है। "प्राचीन ऋषियों ने जिस बुद्धियोग का विकास किया था, राम उसके उदाहरण हैं। सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण में एक समान अविचल रहनेवाली बुद्धि ही प्रज्ञा है। गीता में एक समान अविचल रहनेवाली बुद्धि ही प्रज्ञा है। गीता में इस प्रज्ञायोग का वर्णन है। राम के लिए प्रसिद्ध है कि राज्याभिषेक के समाचार के बाद वरदानिक वनवास के समाचार से उनके मुख पर कोई परिवर्तन नहीं देखा गया। राज्य के नाश से उनके मुख की श्री में कोई अन्तर नहीं पड़ा। वन को जाते हुए और पृथिवी को छोड़ते हुए उनके चित्त में ज़रा-सा विकार नहीं आया। राम ने स्वयं कैकेयी से कहा है-

न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोपकर्षति।
न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।"[6]

वेद-वेदांग में पारंगत और धनुर्वेद में निष्ठित हैं। राम आर्य हैं। सदा हँसकर बोलते हैं, उनका दर्शन ही सुंदर है। वह सब शास्त्रों के मर्म को जाननेवाले स्मृतिवान हैं, उनकी बुद्धि में नवीन कल्पनाओं या विचारों का स्फुरण होता रहता है। पराक्रम में विष्णु, कांति में चंद्रमा, क्रोध में कालाग्नि, क्षमागुण में पृथिवी, त्याग में कुबेर और सत्यगुण में साक्षात् धर्म के समान हैं। वे प्रजाओं के हित में रत रहनेवाले हैं, स्वजन और धर्म के रक्षक हैं। वाल्मीकि हमें बार-बार याद दिलाते हैं कि राम प्रजानों के हित में रत रहने वाले हैं, स्वजन और धर्म के रक्षक हैं। सघन दंडकवन में मुनि राम के पास आकर कहते हैं- "हे राम, तुम धर्मज्ञ, धर्मवत्सल हो।"[7] श्रीकृष्ण ने भी जीवन को कर्म के साथ जोड़ा है। कर्म त्यागा जाए तो यह लोक ही ठप हो जाए। इससे ज्ञात होता है कि कर्म तो शरीरधारी को करना ही पड़ेगा। जब कर्म के बिना छुटकारा नहीं तो बुद्धिपूर्वक उसका महत्त्व और उसकी युक्ति का निर्णय किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से गीता संसार के समस्त धार्मिक ग्रंथों में अकेली है, वह कर्म का शास्त्र है। महाभारत में कहा गया है- राज्य की नींव सत्य पर है। सत्य से ही लोक प्रतिष्ठित है। ऋषि और देव सत्य को श्रेष्ठ मानते हैं। सत्यपरायण धर्म ही सबका मूल है। यही लोक का ईश्वर है। धर्म इसपर आश्रित है। इससे परे और कुछ नहीं है। दान, यज्ञ, अग्निहोत्र और तप सब सत्य के बल पर टिके हुए हैं। वेद भी सत्य पर प्रतिष्ठित हैं, इसलिए

सत्यपरक होना चाहिए। अकेला सत्य ही लोक का पालन करता है, वही कुलों की रक्षा करता है। राजाओं को प्रजारंजन की कामना से शासन में प्रवृत्त होना चाहिए। ऐसा करके राजा लोक से उऋण होता है और सम्मान पाता है। वही राजा अच्छा है, जो अपने आरम्भ किए हुए कार्यों को ही प्रकट होने देता है। अच्छा राजा प्रजाओं के प्रति ऐसा बर्ताव करता है जैसे घर में पिता पुत्रों के साथ। जिसके राज्य में प्रजा जन निर्भय होकर विचरते है, वही राजा उत्तम है। जिसके पुरवासी अपने वैभव को छिपाते नहीं तथा नीति और अनीति को जानते हैं, वही राजा राजसत्तम है। "राजधर्म के अनुसार उनका पालन राजा का मुख्य कर्तव्य था। उसे प्रजा-रूप में जो समाज प्राप्त होता था, उसमें चार वर्ण और चार आश्रम का संगठन सर्वोपरि था।"[8] जिसके राज्य के निवासी अपने कर्मों में निरत रहते हैं, किसी का हनन नहीं करते और यथाविधि रक्षित होकर शांत बने रहते हैं, ऐसा राजा उत्तम है। वही सच्चा राजा है जिसके राज्यवासी वंशी, सुमार्गगामी, विनीत, संघर्ष से दूर रहने वाले दानी होते हैं। जिस राजा के राज्य में कूट-कपट, माया और द्वेष नहीं होता वहीं सनातन धर्म देखे जाते हैं। जो ज्ञानियों का सत्कार करता है, बुद्धिमानों की सलाह मानता है और पुरवासियों का हित करता है। इस प्रकार ये सब आदर्श राजधर्म के गुण हैं-

"राजधर्मे पुराणे //
मज्जत् त्रयी दंडनीतौ हतायां सर्वे धर्माः
प्रक्षयेयुर्विवृद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हृताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते
सर्वे त्यागा राजधर्मेष दृष्टाः सर्वाः दीक्षा
सर्वा विद्या राजधर्मेषु चोक्ताः सर्वे लोका
राजधर्मेषु युक्ताः।
राजधर्मे प्रविष्टाः।"[9]

जिसकी चर्चा राजधर्म के अभाव में राष्ट्र के वर्णन में वाल्मीकि ने एक गीत दिया है, वह संस्कृत साहित्य में अद्भुत है। उसी से उनके राष्ट्रीय आदर्श का सम्यक् परिचय मिलता है- राजधर्म के अभाव में राष्ट्र असंतुलित हो जाता है। उस समय जनपद में मेघ दिव्य जल से पृथिवी को नहीं सींचते। खेत बंजर हो जाते हैं। राष्ट्र में न धन रहता है, न स्त्री। सत्य का राजधर्म के अभाव में स्थान कहाँ रह सकता है ? देश में मनुष्य सभा नहीं कर पाते, प्रसन्न होकर उद्यान और घर नहीं बनवा सकते। यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण व्रत ग्रहण करके सूत्रों में नहीं बैठ पाते। देश में यज्ञशील, धनी, ब्राह्मण भी महायज्ञों में रत्नों से पूर्ण दक्षिणा नहीं देते। देश में व्यवहार करनेवाले के मनोरथ पूरे नहीं होते। योग और क्षेम का नाश हो जाता है। राष्ट्र की सेना शत्रुओं से युद्ध नहीं करती। शास्त्रविशारद मनुष्य वनों और उपवनों में शास्त्र की चिंता करते हुए एक-दूसरे से नहीं मिलते। जितेंद्रिय पुरुष माला, मिष्टान्न और दक्षिणा से देवताओं की पूजा नहीं कर सकते। जैसे बिना जल के नदी, बिना घास के वन और बिना गोपाल के गौएँ होती हैं, वैसे ही बिना राजा का राष्ट्र होता है। मनुष्य का कुछ भी अपना नहीं होता। जल में मछलियों के समान मनुष्य एक-दूसरे को हड़पने लगते हैं। वर्णाश्रम की मर्यादाएँ जिन्होंने तोड़ दी हैं, जिन्हें पहले राजदंड दिया जाता था, वे नास्तिक लोग निडर होकर राजधर्म के अभाव में राष्ट्र में प्रभावशाली बन जाते हैं।

"वेद व्यास के मत के अनुसार लोक का सारा जीवन राजधर्म के आश्रित है। राजधर्म बिगड़ गया तो वेद, धर्म, वर्ण, आश्रम, त्याग, तप, विद्या, सब कुछ नष्ट हुआ समझना चाहिए।"[10] यदि साधु-असाधुओं का पृथक् विभाग करनेवाला राजा इस लोक में न होता, तो जैसे दिन अंधकार में विलीन हो जाता है, वैसे ही सबकुछ तम में डूब जाता। वेदव्यास जिस भारत राष्ट्र की उपासना करते थे, भविष्य का प्रत्येक मानव उसका स्वप्न देखेगा। उनका निम्नलिखित राष्ट्रगीत हमारे इतिहास का सनातन मंगलाचरण होगा :

"अत्र ते कीर्तियिष्यामि वर्ष भारत भारतम्।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोवैर्वस्वतस्य च।
पृथोस्तु राजन्वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च।
तथैव मुचुकुन्दस्य शिबेरौशीनरस्य च।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ॥
कुशिकस्य च दुर्यर्ष गाधेश्चैव महात्मनः।
सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च।
अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम्।"[11]

राजधर्म के कारण पुण्य कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं। क्षात्र धर्म लोक में ज्येष्ठ और सब धर्मों का पारायण है। वहीं अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति कराता है और स्वयं अक्षय और सर्वत्र गति रखने वाला है।"व्यक्तियों को राजधर्म का ठीक निश्चय नहीं होता। जो प्रत्यक्ष रुप में बहुत सुख देनेवाला है, अपना आत्मा जिसका साक्षी है, जो छल रहित है, जो सर्व लोकों का हितकारी है, ऐसा धर्म क्षात्र धर्म है। आश्रम धर्मो के संबंध में व्यवसायात्मक विचार करनेवाले ब्राह्मणों ने त्रिवर्ण के धर्मों को जैसा पूर्व में कहा, वह राजधर्म में सुचरितों द्वारा लोक प्रत्यक्ष हुआ। अनेक शूरवीर राजा दंडनीति की शरण में गए। उन्होंने स्वयं दृष्टांत बनकर अपने एक-एक कर्म से राजधर्म का पालन किया। आदिकाल में ब्रह्माजी ने जिन देवों को बनाया, वे भी राजधर्म का ही पालन करते हैं।"[12]

जिस प्रकार शरीर के हित अहित की प्रवर्तक आँख है, उसी प्रकार राष्ट्र में जो सत्य और धर्म है, उनका प्रवर्तक राजा है। राजा सत्य और धर्म है, कुलीनों का कुल है। राजा माता-पिता और राजा ही हितकारी है। अंत में महाकवि राष्ट्र और राजा की महिमा और कर्तव्य को सर्वोच्च पद पर पहुँचा देते हैं। "मनु के राजधर्म का ऊँचा आदर्श राज्याभिषेक की शपथ के साथ से ही भारतीय नरेशों को दीक्षित करता रहा है। ऐतिहासिक युग में गुप्तवंशी सम्राट् इसके उदाहरण स्वरूप हमारे सन्मुख आते हैं, जिनके समय में कवि के अनुसार स्वर्ग की समृद्धि पृथ्वी पर उतर आई।"[13]

निष्कर्ष : राजा को नीतिमान और वाग्मी, सुंदर भाषण करने वाला होना चाहिए। जो देवकल्प, ऋजु और धर्म के तत्त्व को जानने वाला हो। मन, कर्म और वचन से सत्य का पालन करने वाला हो। जो राजधर्म से सदा प्रजाओं का हित करने वाला हो। जीवों के रक्षक, धर्म के रक्षक, स्वधर्म और स्वजनों का पालन करने वाले हो। राजा को राम जैसा होना चाहिए, जब मुनियों को राक्षस लोग अनेक प्रकार से सताते थे, तो राम अपने पौरुष से उनकी रक्षा करते थे। उन्होंने राजधर्म, न्याय, तप, त्याग से एक आदर्श राजा का कर्तव्य एवं राज्य स्थापित किया। जिसमें सदैव लोक कल्याण की भावना सन्निहित रही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची :

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण, (1979). भारतीय धर्म-मीमांसा. वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन, पृ. सं. -149.
2. अग्रवाल, वासुदेवशरण, (1979). भारतीय धर्म-मीमांसा. वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन, पृ. सं. – 151.
3. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (1979). भारतीय धर्म-मीमांसा. वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन, पृ. सं. – 151.
4. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (1979). भारतीय धर्म-मीमांसा. वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन, पृ. सं -150.
5. अग्रवाल, वासुदेवशरण. भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं. –49.
6. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (2007). कल्पवृक्ष. नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ.सं .-113.
7. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (2007). कल्पवृक्ष. नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ.सं .-114.
8. वात्स्यायन,कपिला. (सं.). (2012). वासुदेवशरण अग्रवाल रचना-संचयन. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, पृ.सं .-600.
9. अग्रवाल, वासुदेवशरण, (1952). कला और संस्कृति. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं -36.
10. वात्स्यायन,कपिला. (सं.). (2012). वासुदेवशरण अग्रवाल रचना-संचयन. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, पृ. सं. – 327.
11. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (2007). कल्पवृक्ष. नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं. – 67.
12. वात्स्यायन,कपिला. (सं.). (2012). वासुदेवशरण अग्रवाल रचना-संचयन. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, पृ. सं-603.
13. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (1952). कला और संस्कृति. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं .-57.